प्रवचन नं. ३६ गाथा-९-१० ता. १७-७-७८ सोमवार अषाढ सुदी-१२ सं.२५०४

भावार्थ :- यह शास्त्रज्ञान से अर्थात अंतर के ज्ञान से भावज्ञान, श्रुतज्ञान उससे अभेदरूप ज्ञायक मात्र शुद्धात्मा को जाने... ***वर्तमान समय में अभेद चीज है। जिसमें पर्याय का भी भेद नहीं, जिसमें वर्तमान में जिसका त्रिकालीरूप ध्रुव है और जो ज्ञान सीधा भगवान आत्मा को जाने वह निश्चय श्रुतकेवली है।*** उसने जाना अवश्य जो जानना था वह जाना। आहाहा ! जो अंतरज्ञान से भाव (श्रुत) ज्ञान से, शास्त्र ज्ञान तो एक निमित्त से कथन है परन्तु इस शास्त्र ज्ञान (के निमित्त) से स्व के आश्रय से उत्पन्न हुआ - ऐसा जो ज्ञान यह सीधे ज्ञाता को जानता (है) अभेद को... एक समय में अभेद चीज है, उसको जो अनुभवे, उसको जाने, यह श्रुतकेवली है। `यह तो वास्तव में परमार्थ है'। समझ में आता है कुछ ? ज्ञानानंद प्रभु शुद्ध विज्ञानघन वर्तमान में पूर्ण स्वरूप, ऐसी चीज को जिसने अंदर में ज्ञान से जाना, उसे जाननेवाला जो ज्ञान है, उसने जिस द्रव्य को जाना, वस्तु को जाना वह ज्ञान परमार्थ से निश्चय है, यह सत्यज्ञान है, अथवा सत्यश्रुतकेवली है। आहाहा !

पुनश्च जो सर्व शास्त्र ज्ञान को जाने, दोनों जगह - ऐसा लिया, मूल में तो ज्ञान को जो जाने... ज्ञान को जो जाने, उसको भी ज्ञान द्वारा जानने से आत्मा को ही जाना, कारण कि ज्ञान को आत्मा के साथ संबंध है, और जो ज्ञान को जाने वह आत्मा को जाने - ऐसा, जो भेद से कथन उसको व्यवहार श्रुतकेवली कहा जाता (है)। ज्ञान को हो ! जो ज्ञान वस्तु को जाने उस ज्ञान को व्यवहार श्रुत कहा जाता है। क्योंकि ज्ञान सो आत्मा - ऐसा ज्ञान को भेद से बताया इसलिये उस ज्ञान को व्यवहार श्रुत कहा जाता है। अरे ! ऐसी बातें ! ज्ञान सो आत्मा है **`इसलिये ज्ञान ज्ञानी के भेद को कहनेवाला जो व्यवहार'** `ज्ञान सो आत्मा' यह जाननेवाला, जाननेवाला, जाननेवाला ज्ञान वह आत्मा, इसप्रकार ज्ञान और ज्ञानी का भेद कहनेवाला व्यवहार, उसने भी परमार्थ ही कहा।

यह ज्ञान सो आत्मा इसप्रकार परमार्थ तो आत्मा को ही उसने कहा। जो सीधा ज्ञान से आत्मा को जाने यह तो एकदम निश्चय, परंतु ज्ञान सो आत्मा इसप्रकार ज्ञान ने भी आत्मा को बताया इसलिये उस ज्ञान को भी व्यवहार श्रुतकेवली कहने में आता (है) (कारण कि) उसको भेद से समझाया कि यह ज्ञान सो आत्मा समझ में आया कुछ ? ज्ञान और ज्ञानी का भेद कहनेवाला, ज्ञानी अर्थात आत्मा त्रिकाली

और ज्ञान अर्थात वर्तमान जानपना उसको भी ज्ञान ज्ञानी का भेद करके व्यवहार, उसको भी परमार्थ ही कहा, उसने कहा तो परमार्थ जो त्रिकाली ज्ञान है वह यह ज्ञान है, त्रिकाली वस्तु है उसको यह ज्ञान दिखता है, यह ज्ञान त्रिकाली को दिखाता है, इसलिये ज्ञान ने परमार्थ को ही बताया। भेद किया इतना, इसमें (इसलिये) व्यवहार कहने में आया, समझ में आया ? ऐसी सूक्ष्मबात !

वस्तु है, वस्तु एक समय में अभेद एकरूप चीज उसको वर्तमान ज्ञान से जानकर अनुभव करे यह तो परमार्थ ज्ञान है अर्थात श्रुतकेवली है। परंतु जो ज्ञान उसको बताया वह ज्ञान इस ज्ञान ने भी बताया उस वस्तु को, इसलिये उस ज्ञान को भी व्यवहार श्रुतकेवली कहा जाता है। कारण कि जो ज्ञान है वह आत्मा - ऐसा इसने कहा। उसने कहा तो परमार्थ को परंतु भेद डालकर कहा इसलिये उस ज्ञान को व्यवहार कहा जाता है।

(श्रोता :- इसप्रकार प्रमाणका विषय कहा जाता ?)

यह बात यहाँ नहीं यह तो ज्ञान ने भेद डालकर ज्ञानी को बताया इतनी बात। प्रमाण की यहाँ बात है नहीं। जो ज्ञान, भावज्ञान जो हुआ, वह हुआ है तो त्रिकाली ज्ञायक आत्मा के अवलम्बन से परंतु उस ज्ञान ने त्रिकाली आत्मा का ही अनुभव किया, उसका नाम भावश्रुतज्ञान केवली। भावश्रुत द्वारा वस्तु को अनुभवा इसलिये परमार्थ से वह निश्चय है और जिस ज्ञानने यह ज्ञान सो आत्मा - ऐसा भेद करके ज्ञान को कहा, कहा तो ज्ञान को, परमात्मा ने भी, ज्ञान सो आत्मा, इतना भेद डाला इसलिये इस ज्ञान को व्यवहार कहा जाता है, और उस व्यवहार ने भी बताया तो आत्मा कि यह, ज्ञान सो आत्मा इसप्रकार। आहाहा ! - ऐसा मार्ग है बापा ! बहुत सूक्ष्ममार्ग प्रभु का। आहाहा ! इसके लिए बहुत धैर्यवान होना पड़े।

और कुछ नहीं कहा। व्यवहारने भी परमार्थ कहा। ज्ञान यह आत्मा - ऐसा कहा न ! यह इसने व्यवहार ने भी परमार्थ को कहा और कुछ कहा नहीं। ज्ञान सो राग, ज्ञान सो शरीर, ज्ञान वह भगवान को जानता है - ऐसा कहीं ज्ञान ने कहा नहीं। ज्ञान वह भगवान को जानता है केवली को जानता है - ऐसा इसने कहा नहीं, यह ज्ञान वह आत्मा को दिखाता है, ज्ञान सो आत्मा है इसप्रकार - ऐसा भेद करके कहा तो परमार्थ को और कुछ कहा नहीं। अन्य वस्तु को उसमें बताई नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

यह तो दो दिन से चलता है परसों भी चला था, कल लिया था हमने बाबूलालजी ने विस्तार करने को कहा था न, कल लिया था यह फिरसे, यह तो भावार्थ है। आहाहा ! सूक्ष्म बात है। बापू ! अनंतकाल से मार्ग को जाना नहीं और वर्तमान

में तो गुटाला - ऐसा उठा है कि कहीं वस्तु को पहुंच सके कैसे, इस बात का ठिकाना नहीं मिलता। यह तो व्रत करो और तप करो और उपवास करो एवं भक्ति करो और यात्रा करो जो पर तरफ के लक्ष्यवाले भाव करो यह तो विकार राग है। हाँ ! यह बात। आहाहा ! यह तो प्रभु स्वयं सर्वोत्कृष्ट है। कल दोपहर को नहीं आया, यह सर्वोत्कृष्ट यह परमात्मा कहलाता है। यह तुम स्वयं सर्वोत्कृष्ट प्रभु हो वस्तु अंदर हाँ ! उसे जो ज्ञान सीधा अनुभव करे, उसका नाम परमार्थ और यह ज्ञान सो आत्मा (भेद करके) इस प्रकार जो ज्ञान जानता है व्यवहार कहकर परंतु व्यवहार ने बताया तो आत्मा को, परंतु इतना भेद किया कि यह `ज्ञान और आत्मा' ज्ञान आत्मा को सीधा अनुभवे यह तो निश्चय परमार्थ परंतु ज्ञान सो आत्मा - ऐसा व्यवहार कहकर भी बताया आत्मा, इतना व्यवहार से `ज्ञान सो आत्मा' को बताया है ज्ञान ने पर को बताया - ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा ! और कुछ नहीं कहा। देखा ?

क्या कहा यह ? कि यह ज्ञान जानता है न, वर्तमान जानने की दशा वह आत्मा, यह ज्ञान सो आत्मा, ज्ञान सो यह राग, और ज्ञान सो पर को जाने वह ज्ञान - ऐसा कहीं ज्ञान को कहा नहीं। ज्ञान पर को जाने वह ज्ञान - ऐसा (कहीं कहा नहीं) यह ज्ञान इसे जाने, ज्ञान सो यह आत्मा है। इसे जाने उसका नाम ज्ञान - ऐसा ज्ञान ने भेद करके कहा इसलिये उसको व्यवहार कहा और उस व्यवहार ने भी बताया है आत्मा को। आहाहाहा ! कितना याद रखना इसमें ? सभी बातें नई है। बापू ! अंतर में मार्ग - ऐसा है।

तथा परमार्थ का अन्य विषय तो कथंचित वचनगोचर भी नहीं, क्या कहते हैं ? आत्मा का अनुभव आत्मा-आत्मा उसका कहना उसे परमार्थ को किस तरह समझायें, भेद करके समझायें कि ज्ञान सो आत्मा। सीधा अभेद आत्मा अकेला समझा सकें - ऐसा नहीं। आहाहा ! `परमार्थ का विषय तो कथंचित वचनगोचर भी नहीं' त्रिकाली वस्तु। इसलिये व्यवहारनय आत्मा को प्रगटरूप में कहता है - ऐसा जानना। यह `ज्ञान सो आत्मा' इसप्रकार व्यवहारनय आत्मा को ज्ञान सहित ज्ञान से तादात्म्य संबंध इसके साथ है - ऐसा व्यवहार बताता है। यह गाथा पूरी हुई। कहो हीराभाई ! सूक्ष्म तो आया बहुत। आहाहा !

राग और पर उसकी यहाँ बात ही नहीं। यहाँ तो ज्ञान का जो भाव है अंदर (है) राग बिना का ज्ञान, यह ज्ञान सीधा आत्मा का अनुभव करे, यह तो निश्चय, सत्य परमार्थ वस्तु है, परंतु जो ज्ञान - ऐसा बताये कि यह `ज्ञान सो आत्मा' ऐसे भेद से बताये उसे व्यवहार कहा जाता है। उस ज्ञान को व्यवहार श्रुतकेवली कहने

में आता है और उस व्यवहार श्रुतज्ञान ने भी यहाँ क्या कहा ? कि `ज्ञान सो यह आत्मा' इतना भेद करके भी उसने परमार्थ को बताया इसलिये उसे व्यवहार कहा जाता है। कहो समझ में आता है कुछ ? आहाहा ! - ऐसा है।

अब गाथा ऊँची आई जैनदर्शन का प्राण। बराबर ठीक है आज यहाँ आज आया है। भाई ! बाबूलालजी ! यह गाथा जैनदर्शन का प्राण है ११ वीं गाथा। आहाहा ! त्रिलोकनाथ जैन परमेश्वर, यही परमेश्वर है न उन्होंने ही तीनकाल, तीनलोक देखा। दूसरा कोई है ही नहीं। यह परमेश्वर का जो शासन है जैनशासन जैन (अर्थात) शिक्षा जैनों का मार्ग उनका यह परमार्थ है यह गाथा जैनदर्शन का प्राण है। कि जिस प्राण से जैनदर्शन जिंदा और टिके, जैसे यह प्राण हों तो शरीर टिकता। इसीप्रकार यह प्राण हो तो आत्मा टिके, जैनदर्शन का प्राण, (पं.) कैलाशचन्द्रजी ने भी लिखा है एक बार तो इस गाथा के लिये - ऐसा कि यह गाथा तो जैनदर्शन का प्राण है, कैलाशचन्द्रजी है न, उन्होंने लिखा था एक बार। यहा तो अलौकिक बातें है।

गाथा - ११

कुतो व्यवहारनयो नानुसर्त्तव्य इति चेत् -

ववहारो भूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो।।११।।

व्यवहारोऽभूतार्थो भूतार्थो दर्शितस्तु शुद्धनयः।
भूतार्थमाश्रितः खलु सम्यग्दृष्टिर्भवति जीवः।।११।।

अब, यह प्रश्न उपस्थित होता है कि - पहले यह कहा था कि व्यवहार को अंगीकार नहीं करना चाहिये, किन्तु यदि वह परमार्थ को कहनेवाला है तो ऐसे व्यवहार को क्यों अंगीकार न किया जाये ? इसके उत्तररूप में गाथासूत्र कहते हैं :-

व्यवहारनय अभूतार्थ दर्शित, शुद्धनय भूतार्थ है।
भूतार्थ आश्रित आत्मा, सदृष्टि निश्चय होय है।।११।।

गाथार्थ :- [व्यवहारः] व्यवहारनय [अभूतार्थः] अभूतार्थ है [तु] और [शुद्धनयः] शुद्धनय [भूतार्थः] भूतार्थ है - ऐसा [दर्शितः] ऋषीश्वरों ने बताया है; [जीवः] जो जीव [भूतार्थ] भूतार्थ का [आश्रितः] आश्रय लेता है वह जीव [खलु] निश्चय से (वास्तव में) [सम्यग्दृष्टिः] सम्यग्दृष्टि [भवति] है।

टीका :- व्यवहारनय सब ही अभूतार्थ है, इसलिये वह अविद्यमान, असत्य, अभूत, अर्थ को प्रगट करता है; शुद्धनय एक ही भूतार्थ होने से विद्यमान, सत्य, भूत अर्थ को प्रगट करता है। यह बात दृष्टांत से बतलाते हैं :- जैसे प्रबल कीचड़ के मिलने से जिसका सहज एक निर्मलभाव तिरोभूत (आच्छादित) हो गया है, ऐसे जल का अनुभव करनेवाले पुरुष-जल और कीचड़ का विवेक न करनेवाले (दोनों के भेद को न समझनेवाले) - बहुत से तो उस जल को मलिन ही अनुभवते हैं, किन्तु कितने ही अपने हाथ से डाले हुवे कतकफल[1] के पड़ने मात्र से उत्पन्न जल-कादव के विवेकता से, अपने पुरुषार्थ द्वारा आविर्भूत किये गये सहज एक निर्मलभावपने से उस

१ कतकफल = निर्मली; (एक औषधि जिससे कीचड़ नीचे बैठ जाता है)।

जल को निर्मल ही अनुभव करते हैं; इसीप्रकार प्रबल कर्मों के मिलने से जिसका सहज एक ज्ञायकभाव तिरोभूत हो गया है, ऐसे आत्मा का अनुभव करनेवाले पुरुष- आत्मा और कर्म का विवेक (भेद) न करनेवाले, व्यवहार से विमोहित हृदयवाले तो, उसे (आत्मा को) जिसमें भावों की विश्वरूपता (अनेकरूपता) प्रगट है - ऐसा अनुभव करते हैं; किन्तु भूतार्थदर्शी (शुद्धनय को देखनेवाले) अपनी बुद्धि से डाले हुवे शुद्धनय के अनुसार बोध होनेमात्र से उत्पन्न आत्मकर्म के विवेकता से, अपने पुरुषार्थ द्वारा आविर्भूत किये गये सहज एक ज्ञायकभावत्व के कारण उसे (आत्मा को) जिसमें एक ज्ञायकभाव प्रकाशमान है - ऐसा अनुभव करते हैं। यहाँ, शुद्धनय कतकफल के स्थानपर है, इसलिये जो शुद्धनय का आश्रय लेते हैं वे ही सम्यक् अवलोकन करने से सम्यग्दृष्टि हैं, दूसरे (जो अशुद्धनय का सर्वथा आश्रय लेते हैं वे) सम्यग्दृष्टि नहीं हैं। इसलिये कर्मों से भिन्न आत्मा के देखनेवालों को व्यवहारनय अनुसरण करने योग्य नहीं है।

भावार्थ :- यहाँ व्यवहारनय को अभूतार्थ, और शुद्धनय को भूतार्थ कहा है। जिसका विषय विद्यमान न हो, असत्यार्थ हो उसे अभूतार्थ कहते हैं। व्यवहारनय को अभूतार्थ कहने का आशय यह है कि शुद्धनय का विषय अभेद एकाकाररूप नित्य द्रव्य है, उसकी दृष्टि में भेद दिखाई नहीं देता; इसलिये उसकी दृष्टि में भेद अविद्यमान, असत्यार्थ ही कहना चाहिए। - ऐसा न समझना चाहिये कि भेदरूप कोई वस्तु ही नहीं है। यदि - ऐसा माना जाये तो जैसे वेदान्त मतवाले भेदरूप अनित्य को देखकर अवस्तु मायास्वरूप कहते हैं और सर्वव्यापक एक अभेद नित्य शुद्ध ब्रह्म को वस्तु कहते हैं वैसा सिद्ध हो और उससे सर्वथा एकान्त शुद्धनय के पक्षरूप मिथ्यादृष्टि का ही प्रसंग आये, इसलिये यहाँ - ऐसा समझना चाहिये कि जिनवाणी स्याद्वादरूप है, वह प्रयोजनवश नय को मुख्य-गौण करके कहती है। प्राणियों को भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादि काल से ही है और इसका उपदेश भी बहुधा सर्व प्राणी परस्पर करते हैं और जिनवाणी में व्यवहार का उपदेश शुद्धनय का हस्तावलम्बन (सहायक) जानकर बहुत किया है; किन्तु उसका फल संसार ही है। शुद्धनय का पक्ष तो कभी आया नहीं और उसका उपदेश भी विरल है - वह कहीं कहीं पाया जाता है। इसलिये उपकारी श्रीगुरुने शुद्धनय के ग्रहण का फल मोक्ष जानकर उसका उपदेश प्रधानता से दिया है कि - `शुद्धनय भूतार्थ है, सत्यार्थ है; इसका आश्रय लेने से सम्यक्दृष्टि हो सकता है; इसे जाने बिना जबतक जीव व्यवहार में मग्न है तबतक आत्मा का ज्ञान श्रद्धानरूप निश्चय सम्यक्त्व नहीं हो सकता।' - ऐसा आशय समझना चाहिये।

गाथा - ११ पर प्रवचन

आहाहा ! अब पुनः - ऐसा प्रश्न उठता है कि पहले - ऐसा कहा था कि व्यवहार नय को अंगीकार नहीं करना। आठमी गाथा में - ऐसा कहा था, कि व्यवहार का अनुसरण न करना और तुम कहते हो कि व्यवहार यह परमार्थ को बताता है तब यह व्यवहार क्यों अंगीकार नहीं करना ? वह परमार्थ का कहनेवाला है तब ऐसे व्यवहार को क्यों अंगीकार नहीं करना ?

क्या प्रश्न है ? प्रश्न का स्वरूप क्या है ? प्रश्न की रीति - स्वरूप - स्थिति क्या है ? प्रश्न कर्त्ता का यह प्रश्न है कि तुमने पहले आठवीं गाथा में - ऐसा कहा कि दर्शनज्ञानचारित्र को प्राप्त हो वह आत्मा - ऐसा व्यवहार कहा, और यह व्यवहार अनुसरण करने लायक नहीं, कहनेवाले को और सुननेवाले को - ऐसा आठवीं गाथा में तो तुमने कहा, अतः वह व्यवहार अनुसरण करने लायक नहीं और तुम कहते हो कि व्यवहार परमार्थ को कहनेवाला है, यह व्यवहार अंतर के परमार्थ को बतानेवाला है, तब यह व्यवहार अंगीकार क्यों नहीं करना ? प्रश्न समझ में आता है कुछ ? उसके प्रश्न का रूप यह है।

जब तुमने - ऐसा कहा कि भगवान आत्मा... यह आत्मा कहने पर यह नहीं समझा तब तुम्हें भेद डालकर समझना पड़ा, कि आत्मा अर्थात क्या ? कि दर्शन, ज्ञान, चारित्र को हमेशा प्राप्त हो, दर्शन-ज्ञान-चारित्र से आत्मा प्राप्त हो - ऐसा नहीं परंतु जो आत्मा है वह दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त होता है - ऐसा भेद से उसने समझाया... फिर भी बाद में आपने - ऐसा कहा कि ऐसे भेद से हमने समझाया है, हमको भी विकल्प में यह समझाने का भाव आया और तुम्हें भी कहते हैं, फिर भी इस भेद का अनुसरण करने लायक नहीं। आहाहा ! भेद आदरने लायक नहीं। अंदर अभेद त्रिकाली वस्तु है वह आदरणीय है। आहाहाहा ! समझ में आया ?

भाषा तो सरल है, परंतु भाई भाव जो कुछ हो उसे नीचे किस प्रकार करना ? आहाहा ! अंदर चैतन्य रत्नाकर भगवान, अनंत अनंत गुण मणियों की रत्नमाला से भरा हुआ भगवान ! आहा ! अनंत अनंत गुणों की खान, बापू ! आत्मा अर्थात क्या ? आहाहा ! सर्वोत्कृष्ट प्रभु आत्मा अंदर वस्तु, उसे आपने भेद करके समझाया कि जो आत्मा है वह ऐसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त होती है। राग को प्राप्त हो और पर को प्राप्त हो - ऐसा नहीं कहा। मात्र इतना तुम्हें भेद समझाना पड़ा।

यह आत्मा श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता को प्राप्त हो सो आत्मा। तब आपने व्यवहार

से तो समझाया, भेद करके तो समझाया, तब व्यवहार तो आया। पुनः तुम कहते हो कि व्यवहार अंगीकार करना नहीं। व्यवहार आये बिना रहे नहीं और व्यवहार अंगीकार करने लायक नहीं। यह क्या तुम कहते हो ? समझ में आया ? आहाहाहा !

ऐसी बातें यह तो जैनदर्शन के मंत्र है। आहाहा ! अब पुनः - ऐसा प्रश्न उठता है कि पहले - ऐसा कहा था कि व्यवहार को अंगीकार नहीं करना, पुनश्च - ऐसा तुमने कहा कि व्यवहार परमार्थ का प्रतिपादकपने से स्वयं को दृढ़ता से स्थापित करता है, आखरी पंक्ति आयी न ? टीका की आखरी पंक्ति। टीका की आखरी पंक्ति में है आहा ! वह व्यवहार परमार्थ का कहनेवाला है तब ऐसे व्यवहार को क्यों अंगीकार न करना ? - ऐसा समझने के लिए, उसे मेल नहीं खाता परन्तु वह इतना तो समझ गया है कि व्यवहार अंगीकार नहीं करना - ऐसा आपने कहा और फिर कहा कि व्यवहार परमार्थ को कहनेवाला है, वह परमार्थ को अर्थात् त्रिकाली आत्मा को बताता है तो ऐसा व्यवहार अंगीकार क्यों न करना ? - ऐसा उसे प्रश्न अंदर से उठा उसे यह उत्तर देने में आता है। समझ में आया ?

ऐसी स्थिति जिसके दिमाग में ज्ञानमें से ख्याल में उठी है कि ओहो ! यह तो कहते हैं कि ज्ञान वह आत्मा और दर्शन (ज्ञान) चारित्र को प्राप्त हो वह आत्मा - ऐसा तो व्यवहार है। इस व्यवहार ने निश्चय को बताया है, और यह व्यवहार आये बिना रहता (नहीं) व्यवहार स्थापित करने योग्य है, व्यवहार है - ऐसा स्थापने योग्य है, फिर भी यह व्यवहार आदरणीय नहीं। अंगीकार करने योग्य नहीं। उसका उत्तर क्या है ? समझ में आया ?

व्यवहारोऽभूयत्थो भूयत्थो देसिदो दु सुद्दणओ।
भूयत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो।।११।।

व्यवहारनय अभूतार्थ दर्शित, शुद्धनय भूतार्थ है।
भूतार्थ आश्रित आत्मा, सुदृष्टि निश्चय होय है।।११।।

अभी तो सम्यग्दर्शन कैसे हो, इसकी बात है - चौथा गुणस्थान... आहाहाहा ! गुणस्थान की पर्याय द्रव्य में नहीं। गुणस्थान का भेद वस्तु में नहीं। परंतु वस्तु के आश्रय से होनेवाली पर्याय सम्यग्दर्शन यह क्या चीज है ? व्यवहार अंगीकार नहीं करना तुमने कहा, तब व्यवहार तो आये बिना रहता नहीं व्यवहार से तो समझाया है इसको (परमार्थ को), तब उसका उत्तर क्या है - उसका समाधान क्या है ?

अब गाथा (का) अर्थ पहले लें :- **`व्यवहारनय अभूतार्थ है`** सामान्य बात कही सभी व्यवहार - ऐसी भाषा यहाँ नहीं ली, यह टीका में लेंगें। व्यवहारनय अभूतार्थ

असत्यार्थ है। असत्यार्थ अर्थात् झूठा है। व्यवहारनय असत्यार्थ अभूतार्थ है, विद्यमान पदार्थ नहीं, यह तो असत्य है, और शुद्धनय भूतार्थ है। शुद्धनय स्वयं भूतार्थ है हाँ ! शुद्धनय का विषय भूतार्थ है यह बाद में कहेंगे, परंतु पहले तो यह कहते हैं कि ***त्रिकाली भूतार्थ विद्यमान पदार्थ ज्ञायकभाव स्वभावभाव अभेद भाव यह शुद्धनय है। यह शुद्धनय है, शुद्धनय का विषय है, उसको यहाँ शुद्धनय कहा है,*** बहुत कठिन गाथा है बापू !

क्या कहा यह ? कि व्यवहार मात्र बाद में कहेंगे। अभी तो व्यवहार असत्य है और शुद्धनय वह सत्य है, तब शुद्धनय है यह तो ज्ञान की पर्याय है। इसका विषय है यह त्रिकाली भूतार्थ (विद्यमान) है, परंतु यहाँ तो इस भूतार्थ को ही शुद्धनय कहा। नय और नय का विषय के विषय का भेद भी निकाल दिया पहले, आहाहा ! समझ में आया ? अरें ! ऐसी बातें।

क्या कहा ? शुद्धनय भूतार्थ, शुद्धनय भूतार्थ है। नय तो ज्ञान का अंश है। ज्ञान का अंश है, यह तो पर्याय है, चाहे निश्चय का, निश्चय ज्ञान है परंतु है तो यह पर्याय-ज्ञान का अंश है। उसे तुम भूतार्थ कहते हो ? कि हाँ। क्योंकि उसका विषय भूतार्थ है इसलिये हमने शुद्धनय को भूतार्थ कहा, विषय और विषयी का भेद भी यहाँ निकाल दिया हैं। शुद्धनय है यह विषय करनेवाला ध्येय को पकड़नेवाला, ज्ञेय को जाननेवाला - ऐसा जो भेद है वह यहाँ निकाल दिया है कि शुद्धनय स्वयं भूतार्थ है। आहाहा ! ऐसी बातें हैं।

शुद्धनय भूतार्थ है। आहाहा ! एकतरह कहना कि निश्चयनय को शुद्धनय से जो में आत्मा हूँ भूतार्थ, ऐसा विकल्प भी छोड़ने जैसा है। (गाथा) १४२ मैं शुद्ध हूँ। पूर्ण हूँ, भूतार्थ हूँ, देखो न - ऐसा जो शुद्धनय का विकल्प उठा है यह वास्तव में शुद्धनय नहीं। आहाहा !

इस विकल्प का निषेध करके अकेला चैतन्य भगवान दृष्टि में आये, उसे हम शुद्धनय कहते हैं, ये (जो) शुद्धनय का विषय है उसे ही हम शुद्धनय कहते हैं। आहाहाहा ! ऐसी बात है। ***वास्तव में तो सम्यग्दृष्टि का विषय ही ध्रुव है, समझ में आया कुछ ? परंतु यहाँ तो कहते हैं कि जो त्रिकाली है उसे ही हम सम्यग्दर्शन और शुद्धनय कहते हैं। आहाहा ! वस्तु जो है आहाहा ! यही शुद्धनय है। त्रिकाल चिदानंदप्रभु अभेद, जिसमें राग तो नहीं, परंतु पर्याय का भेद भी नहीं, अभेद चीज वस्तु एकरूप उसे हम शुद्धनय कहते हैं। पहले अभेदपना स्थापा।*** अब इसप्रकार ऋषीश्वरों ने दर्शाया है।

जो जीव, फिर पुनः कहते हैं देखो, `जो जीव भूतार्थ का आश्रय करते हैं' वहाँ

भेद हुआ। वह तो भूतार्थ स्वयं त्रिकाली वस्तु उसे शुद्धनय कहा था, उसे निश्चयनय ही कहा था। अब कहते हैं कि भूतार्थ जो त्रिकाली प्रभु है, सत्यार्थ सत्य वस्तु है, त्रिकाली परमसत्य नित्यानंद प्रभु ध्रुव है, उसका जो आश्रय करे, उसका जो अवलम्बन लेता है, आश्रय करता है, वह जीव निश्चय से सम्यग्दृष्टि है। वह वास्तव में सम्यग्दृष्टि है। सम्यक् अर्थात सत्य दृष्टिवंत है। क्योंकि उसे पूर्ण सत्य को प्रतीति में लिया, पूरण सत्य का आश्रय किया, ***पूर्ण सत्य प्रभु एक समय में अभेद वस्तु का जिसने आश्रय किया। वह आश्रय करनेवाली दृष्टि को हम यहाँ सम्यग्दर्शन कहते हैं।*** आहाहाहा ! समझ में आया ?

यह प्रश्न उठा था, वहाँ वड़वाद में खंभात के पास भाई थे और वहाँ सोमचन्द्रभाई कहे देखो ! `भूयत्थमस्सिदो' पर्याय आयी कि नहीं आश्रय करने में ? - ऐसा प्रश्न किया था। यह तेरहवीं साल में जब पहले निकले थे बोम्बे जाने, तेरह-तेरह इक्कीस वर्ष हो गये, यह प्रश्न वहाँ वड़वा में किया था। परंतु कहा भाई ***आश्रय करती है यह है तो पर्याय, परंतु पर्याय का विषय पर्याय नहीं समझ में आया ? यह पर्याय के आश्रय का विषय त्रिकाली भूतार्थ वस्तु है।*** आहाहा ! क्या कहा यह। कि जो आश्रय तो आया, तब पर्याय तो आई साथ में, परंतु आयी यह पर्याय ने आश्रय किया त्रिकाली चीज का जिसने आश्रय किया, है तो यह पर्याय ने भी आश्रय किया, परंतु आश्रय किया यह पर्याय, उसे सम्यग्दर्शन कहना परंतु इस पर्याय का विषय (ध्येय) पर्याय है - ऐसा नहीं। छोटाभाई ! ऐसी बातें है। आहाहा !

भगवान ! यह दिगम्बर दर्शन तो देखो ! आहाहा ! जैनदर्शन वास्तविक स्वरूप का परमार्थरूप। आहाहाहा !

सत्य साहेब, भगवान सत्य साहेब पूर्ण अभेद एकरूप वस्तु उसका जो आश्रय करे - उसका जो अवलम्बन ले उसे सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। यह तो सरल भाषा है। मोहनलालजी ! आहाहा ! गुजराती में कहो कि हिन्दी में कहो। यह तो भाषा बिलकुल सरल है।

भूतार्थ त्रिकाल एकरूप रहनेवाली वस्तु वर्तमान में एकरूप त्रिकाल। आहाहा ! आहाहा ! भले यह भविष्य में रहेंगी, पहेले थी, परंतु यहाँ तो एकरूप वर्तमान में जो है त्रिकाल रहनेवाला सत्व, अभेद एकरूप सामान्यरूप-नित्यरूप-ध्रुवरूप अभेदरूप उसे पहले निश्चय शुद्धनय कहा था अब यहाँ कहते हैं कि जो दृष्टि और नय उसका आश्रय करे दृष्टि (इस) दृष्टि को उसे सम्यग्दर्शन कहा जाता है। है सम्यग्दर्शन पर्याय, परंतु सम्यग्दर्शन को पर्याय का विषय (ध्येय) पर्याय नहीं कारण कि सम्यग्दर्शनादि चौदहगुणस्थान तो द्रव्य में है ही नहीं। आहाहा !

- ऐसा कैसे समझना इसमें ? कहो हिम्मतभाई ! इस लोहे के व्यापार में कहाँ इससे फुरसत मिलती ? फुरसत निकालनी पड़ेगी। आहाहा ! लोहा का व्यापार अर्थात राग का (व्यापार) राग ही है न ? लोहे का व्यापार। आहाहा !

भगवान सोने के समान, जिसमें जंग नहीं। आहाहा ! जंग जंग सोना में जंग नहीं होती प्रभु ! तीनलोक के नाथ को मैल नहीं होता - ऐसी यह वस्तु है अंदर। आहा ! यह पवित्रता का धाम है भगवान पूर्ण शुद्ध धाम... अपना आया था न दोपहर में तीर्थ... शुद्ध धाम, भगवान वह तीर्थ है। आहाहा ! जिसके आश्रय से तिरने का उपाय प्रगट होता, इसलिये यह वस्तु स्वयं तीर्थ है। आहाहा !

(श्रोता :- आत्मा तीर्थ है कि रत्नत्रय तीर्थ है) यहाँ तो वस्तु को ही तीर्थ कहा, वस्तु के आश्रय से फिर जो प्रगट होता वह रत्नत्रय उपाय है, परंतु उपाय जिससे प्रगटा यही वस्तु तीर्थ है, उसमें स्नान किया, यह द्रव्य में स्नान किया, तब सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र प्रगट हुआ। आहाहा ! यह भूतार्थ का आश्रय करता है वह जीव... निश्चय अर्थात सच्चा, परम सत्य का जिसने आश्रय लिया, परम टिकाऊ वस्तु जो त्रिकाली एकरूप टिकाऊ, टिकती चीज का जिसने आश्रय लिया, वह सम्यग्दृष्टि वह सत् दृष्टि।

त्रिकाली सत् का जिसने आश्रय लिया त्रिकाली सत्ता का, इसलिये वह दृष्टि भी सत्य दृष्टि उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। आहाहा ! सम्यक् अर्थात सत्य दृष्टि उसे कहें जो परम सत्य प्रभु भूतार्थ सत्यार्थ वस्तु भूतार्थ कहो कि सत्यार्थ कहो सत्रूप कायम उसका जिसने आश्रय लिया उस दृष्टि को सम्यग्दृष्टि कहते हैं। आहाहाहा ! यह तो मूल वस्तु की बात है।

पेड़ बड़ा हो इमली का, कि उसके पत्ते और डालियाँ पत्ते तोड़े, परंतु जड़ सुरक्षित हो तो फिर पन्द्रह दिन में यह फूल जायेगा-फल जायेगा। परंतु जिसका मूल काटा, फिर यह पत्ते-फत्ते पन्द्रह दिन (में) यह सूख जायेंगे। इसप्रकार यहाँ तो जिसने मिथ्यात्व जो संसार का मूल उसे छेदा, किस प्रकार ? कि त्रिकाली भगवान का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन हुआ उसने संसार के मूल को काट डाला। समझ में आया ? अब थोड़ा राग-द्वेष अस्थिरता के पत्ते रहे, यह क्रम-क्रम से खिर जायेंगे। आहाहा ! जिसको मूल ही हाथ आया नहीं। आहाहा ! जिसको चीज ही हाथ आयी नहीं, उसे निर्मल पर्याय कहाँ से प्रगट हो ? आहाहा !

क्योंकि प्रभु चैतन्यवृक्ष है कलपवृक्ष आत्मा। आहाहा ! एक समय में पूर्णानंद का नाथ भूतार्थ सत्यार्थ सत्य सत् का पिण्ड अकेला, सत् सत् सत् इसके आश्रय से सत् दृष्टि होती है, उसके बिना किसी के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता नहीं। आहाहा !

वर्तमान पर्याय में ग्यारह अंग का ज्ञान हो, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा हो, यह राग, उसके आश्रय से... यह सत्य नहीं कुछ आहाहाहा ! इसलिये उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता इसप्रकार यह सत् नहीं यह तो असत् है। पर्याय मात्र को यहाँ असत् कहा है गौण करके, स्पष्टीकरण आयेगा। आहाहाहा !

(श्रोता :- मिथ्यादृष्टि को देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, श्रद्धा हो तो ?) यह भी राग है, यह भी एकत्व बुद्धि है, यह राग से लाभ होता है यह बुद्धि, त्रिकाली के आश्रय से सम्यग्दर्शन होते ही यह बुद्धि छिद जाती है। भाव आता है अवश्य पर उससे लाभ होगा और यह हमारी चीज है उसका नाम तो मिथ्यात्व है। देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा का भाव यह भी राग है। पंचमहाव्रत का परिणाम यह भी राग है। इस राग के आश्रय से तो राग ही होगा। आहाहाहा ! यहाँ तो त्रिकाली के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। राग के आश्रय से सम्यग्दर्शन (होता नहीं) आहाहा ! और वह निश्चय सम्यग्दर्शन त्रिकाल सत्यार्थ सत्य सत् सत् सत् सत् परमपारिणामिक-ज्ञायकभावरूपी परमसत्य उसके आश्रय से सम्यक् होता है, उसके बाद उसको ***देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा हो - ऐसे विकल्प को भी व्यवहार समकित का आरोप आता है। यह व्यवहार समकित, समकित ही नहीं है, यह है तो राग, चारित्र की दोष(रूप) पर्याय देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा, पंचमहाव्रत के परिणाम, शास्त्र तरफ का विकल्पवाला ज्ञान यह है तो राग, है तो राग समझ में आया ? आहाहा ! है तो राग, परंतु यहाँ निश्चय स्वभाव की दृष्टि जब हुई, तब उस राग पर व्यवहार समकित का आरोप करके व्यवहार समकित कहा, यह समकित है नहीं। परंतु इसका आरोप देकर निरुपण कथन किया है।*** कथन किया वस्तु ऐसी है नहीं, वस्तु तो एक ही त्रिकाली द्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन वही दर्शन है। देव-गुरु की श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन जिसको यहाँ निश्चय हुआ हो उसे व्यवहार का आरोप देकर कथन किया है परंतु यह कहीं सम्यग्दर्शन नहीं। यह तो राग है। समझ में आया ?

(श्रोता :- शीघ्र समझ में आये - ऐसा नहीं, जल्दी समझ में आये - ऐसा नहीं)

यह हमने शेठ रहे लालचन्द्र ! पुराने व्यक्ति, नहीं समझ में आये - ऐसा नहीं, वह तो प्रेम से आये हैं न प्रेम से सुनने। क्यों शेठ ? समझ में आये - ऐसा है न धीरे-धीरे। आहाहा ! भगवान आत्मा है न प्रभु। आहाहा ! प्रभु तुम्हारी तुम्हें तुम्हारे घर की खबर न लगे- ऐसा कैसे कहलाये ? कलंक लगे प्रभु तुम्हें। आहाहा !

अंदर चैतन्य चमकता हीरा जिसकी चमक का पार नहीं। जिसके ज्ञान की चमक, दर्शन की चमक त्रिकाली की हाँ, आनंद की चमक, अस्तित्व की चमक, प्रभुत्व की चमक, प्रकाश प्रत्यक्ष हो ऐसी शक्ति की चमक आहाहा ! सर्व दिर्शीशक्ति

की चमक, सर्वज्ञत्वशक्ति की चमक ऐसे अनंतगुणों की चमकवाला भगवान (निजात्मा) पूर्णानंद प्रभु ! - ऐसा जो परम सत्य प्रभु, उस परम सत्य को यहाँ निश्चय शुद्धनय कहा है, कहकर फिर पलटा कि भाई यह भी त्रिकाल है उसका आश्रय करे उसे सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा ! आहाहा ! है कि नहीं ? यह शब्दार्थ गाथार्थ हुआ।

अब टीका :- `व्यवहारनय' गाथा में व्यवहारनय असत्यार्थ है - ऐसा कहा था। अब टीकाकार कहते हैं व्यवहारनय `सभी' असत्यार्थ होने से, व्यवहारनय `सभी' असत्यार्थ है। पर्याय मात्र असत्यार्थ है। यह गौण करके हाँ ? पर्याय नहीं - ऐसा कहकर नहीं, आश्रय करने योग्य नहीं और उसे गौण करके नहीं - ऐसा कहा असत्यार्थ और भगवान त्रिकाली सत् है उसे मुख्य करके निश्चय कहा और पर्याय है उसे गौण करके `नहीं' (- ऐसा) कहा, अभाव कहकर नहीं कहा - ऐसा नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

व्यवहारनय सभी - सभी अर्थात चारों (प्रकार) यहाँ अध्यात्म के चार लेना। चार कौन ? एक तो राग जो होता है इस राग को जानना, ज्ञान जाने, जानने में राग आये उसे असद्भूत उपचरित व्यवहारनय कहते हैं। सुनो ! सुनने जैसी सूक्ष्मबात है। ***राग होता है उसे जानता है जीव। इसप्रकार जानता है कि यह राग है। इस अपेक्षा से उसे असद्भूत व्यवहारनय उपचार कहने में आता यह एक नय। राग है उसे वह जानता है कि यह राग है - ऐसा जानने में आता है इस अपेक्षा से वह राग*** को जाननेवाले ज्ञान को उपचरित असद्भूत व्यवहार नय कहा जाता है। ***असद्भूत अर्थात कि (बुद्धिपूर्वक) राग आत्मा में नहीं, व्यवहार अर्थात कि भेद है, राग वह (आत्मा से) दूसरी चीज असत् है; असत् अर्थात कि (राग) त्रिकाली में नहीं - असद्भूत है यह राग है वह त्रिकाली वस्तु में नहीं इसलिये उसे असद्भूत कहा और व्यवहार तो भेद है, अर्थात व्यवहार तो है ही और राग आया उसे जाननेवाला ज्ञान है जानने में आये - ऐसा जो राग, उसे असद्भूत उपचरित व्यवहार कहा है।***

और उस समय उपयोग थोड़ा सूक्ष्म नहीं, स्थूल है, इसलिये राग को जानने का ज्ञान हुआ, उसी समय कितना ही (अबुद्धिपूर्वक) राग जानने में नहीं आये - ऐसा साथ में है। जो राग जानने में आये उस राग को असद्भूत व्यवहारनय कहा, परंतु उसी समय अंदर साथ में है, जानने में नहीं आता-उपयोग काम नहीं करता। अबुद्धिपूर्वक अंदर राग है, समझ में आया ? आहाहा ! यह राग है, उसे जाननेवाले ज्ञान को `अनुपचरित असद्भूत व्यवहार' कहा जाता है। आहाहा !

यह अलौकिक गाथा है बापा ! यह तो बार-बार कहेंगे हाँ। इतनी बातें पुनः भाई ने कल कहा था न बाबूलालजी ने फिर से लो कहा। आहाहा !

प्रभु तुम कौन हो ? ***तुम्हारे स्वरूप में प्रभु अभेद और एकरूपता है। अब इसमें भेद (व्यवहार) के चार, प्रकार एक तो राग होता वह तो असद्भूत है तुममें नहीं, इसलिये वह राग पर्याय में है अवश्य, परंतु द्रव्य में वस्तु में नहीं और वह राग जानने में ख्याल में आता है कि यह राग है इसलिये उस राग को असद्भूत कहा।*** वस्तु में नहीं, इसलिये असद्भूत, (भेद) व्यवहार है इसलिये व्यवहार है - भेद है और उपचार अर्थात कि जानने में आये और फिर भी उसे राग है - ऐसा कहना यह उपचार है

आहाहा ! और उसी समय अभी राग का सूक्ष्म भाग है वह जानने में आता नहीं। उपयोग स्थूल है, इसलिये जानने में आये राग और नहीं जानने में आये - ऐसा राग है अंदर उसी समय। यह (जो) नहीं जानने में आये - ऐसा (अबुद्धिपूर्वक) राग उसे भी असद्भूत कहा कारण कि स्वरूप में नहीं है न, भेद को व्यवहार और उसे अनुपचार कहा (क्योंकि) जानने में आता नहीं इसलिये अनुपचार कहा। जानने में आये उसे उपचार कहा जानने में न आये उसे अनुपचार कहा। यहाँ दो नय हुये। असद्भूत व्यवहारनय दो प्रकार का हुआ। यह निषेध करने लायक है।

अब ऐसी दो दूसरी (नय) सद्भूत व्यवहारनय कि जो ***ज्ञान राग को जाने, ज्ञान का अस्तित्व हमारे अपने में है इसलिये सद्भूत परंतु राग को जाने वह (नय) राग को जाने यह तो सद्भूत, राग को जाने परंतु यहाँ तो राग को जाननेवाला ज्ञान स्वयं करे अपने से, राग को जाननेवाला ज्ञान स्वयं से (होता), स्वपरप्रकाशक ज्ञान पर्याय के सामर्थ से राग को जाननेवाला ज्ञान करे - ऐसा कहना है, तव जाननेवाला ज्ञान अपना राग को जाननेवाला ज्ञान है तो अपना, परंतु यह राग को जानता है - ऐसा कहना यह 'सद्भूत उपचार नय' कहा जाता है।*** ऐसे सभी में चार बोल है।

वह तो राग को जानता है, उसको असद्भूत उपचार व्यवहारनय कहा और यहाँ तो राग को जाननेवाला ज्ञान स्वयं से हुआ है इसलिये वह 'सद्भूत' है परंतु उसने राग को जाना है - ऐसा कहना वह उपचार है। समझ में आया कुछ ? आहाहा !

यह ज्ञान की पर्याय सद्भूत है अपने में, इसलिये सद्भूत, वह राग को जानता - ऐसा कहना वह उपचार है। इसलिये सद्भूत उपचारनय हो गया। 'सद्भूत व्यवहार उपचार' हुआ, और चौथा, यह ज्ञान सो आत्मा है जो अभी आया था - ऐसा भेद करके कथन है, वह सद्भूत अनुपचार व्यवहारनय है कारण कि ज्ञान अपने में है और वह आत्मा को बताता है इसप्रकार ज्ञान 'यह आत्मा है' इतना भेद है अतः व्यवहार है। आहाहा ! समझ में आया ?

अपने में है इसलिये सद्भूत है और इसप्रकार भेद को बताता है इसलिये व्यवहार

है और उसे अनुपचार कहा कारण कि ज्ञान सो आत्मा है यह तो बराबर है इस अपेक्षा से उसको सद्भूत अनुपचार व्यवहारनय कहा जाता है।

चार (नय) हुये, यह 'सभी' कहने में चार प्रकार आते (हैं) दो असद्भूत के दो सद्भूत के व्यवहारनय है। आहाहा ! यह परवाह ही की नहीं, छोटा भाई ! यह कमाना और यह करना। आहाहा ! तीनलोक के नाथ का मार्ग जिनेश्वर का... कहीं है नहीं, इसकी गंध कहीं नहीं। आहा ! इस मार्ग को समझने के लिये (निवृत्ति चाहिए) (श्रोता :- आप कहते हो तब बहुत प्रसन्न होते हैं) इसमें क्या परंतु अभी यह समझें तो... प्रसन्न होना है न कि वीतराग ने कहा वह मार्ग सत्य है - ऐसा स्वयं को अंदर समझ में आये तब खुशी होती आनंद आये। आहाहा !

व्यवहारनय, अर्थात ? भेद को और असद्भूत को जाननेवाला नय उसे व्यवहारनय कहते हैं भेद को और उसमें नहीं त्रिकाली में, ऐसे को जाननेवाले नय को व्यवहारनय कहते। यह व्यवहारनय 'सभी' अर्थात चारों 'असद्भूत उपचरित व्यवहारनय' राग आता है, परंतु त्रिकाली में नहीं इसलिये असद्भूत और उसे जानने में आया फिर भी कहना कि यह राग यह उपचार हुआ। यह असद्भूत उपचार व्यवहारनय यह निषेध करने लायक है। ***अब इसी समय राग है सूक्ष्म वह जानने में आता नहीं, फिर भी है - ऐसा तो ज्ञान में आये, ज्ञान में ज्ञात हो अर्थात ख्याल में आये। - ऐसा यह राग है - ऐसा ख्याल में नहीं आये भले, परंतु अभी यहाँ सूक्ष्मराग है, क्यों ? न हो तो अंदर आनंद आना चाहिए। समझ में आया ? इस प्रकार सूक्ष्मराग है उसे सीधा ख्याल में आता नहीं। परंतु है इसलिये राग को असद्भूत अनुपचार व्यवहारनय कहा जाता है।*** यह असद्भूत के दो प्रकार हुये।

अब सद्भूत के दो (प्रकार)। इस राग को जाननेवाला ज्ञान, यह ज्ञान है तो अपना इसलिये है अपना, इसलिये सद्भूत, परंतु यह राग को जानता है - ऐसा कहना वह उपचार है। आहाहाहाहा ! पकड़ में आये इतना पकड़ना बापू ! यह तो मार्ग... आहाहा ! यह सद्भूत उपचार व्यवहार अर्थात कि पर्याय है वह राग को जाननेवाली है वह पर्याय अपनी है। परंतु राग को जानती है - ऐसा कहना वह सद्भूत व्यवहार है। समझ में आया ? और इसलिये वह राग को जानते है - ऐसा कहना वह सद्भूत व्यवहार उपचार है। आहाहा ! राग को जानता है - ऐसा कहना वह सद्भूत उपचार है। वास्तव में तो राग का ज्ञान है उस ज्ञान को ज्ञान जानता है। समझ में आया ? आहाहा ! - ऐसा मार्ग है।

(श्रोता) :- पर को जानना उपचार और स्व को जानना अनुपचार - ऐसा लेना ?

(उत्तर) :- जानने में राग का ज्ञान हुआ, यह ज्ञान तो हुआ है अपने से, फिर

भी राग को जानता है - ऐसा कहना, यह सद्भूत उपचरित है। आहाहा ! और वह ज्ञान सो आत्मा, यह यही `ज्ञान सो आत्मा' - ऐसा जो भेद किया वह सद्भूत अनुपचरित व्यवहारनय है।

चारों नय असत्य है, यहाँ - ऐसा कहना है। आहाहा ! असत् है अर्थात ? कि यह आश्रय करने लायक नहीं। गौण करके उसे असत्यार्थ कहा जाता है। अन्यथा `ज्ञान सो आत्मा' वस्तु वह बराबर है। परंतु उसका भेद ऊपर लक्ष्य जायेगा तब उसे विकल्प उठेगा इसलिये वह व्यवहारनय में अनुपचार नय को भी असत् कह दिया है।

एक और सद्भूत पर्याय है उसमें, यह राग को जानती है इसप्रकार सद्भूत व्यवहारनय उपचार और `यह ज्ञान आत्मा है' - ऐसा सद्भूत अनुपचार, एक तरफ पर्याय है उसे सद्भूत कहा, पर्याय को हाँ। आहाहाहा ! फिर भी उसे गौण करके जिसे सत् कही थी उसे असत् कहीं है। आहाहाहा !

फिरसे हाँ ? धीरे-धीरे... यह तो धीरे से... पाँच मिनट है, वस्तु है प्रभु ! पूर्ण एकरूप अभेद यह तो दृष्टि का विषय (है) और यह तो भूतार्थ है उसे विषय करती है दृष्टि।

अब, दृष्टि का विषय नहीं ऐसे चार नय है। एक तो यह कि राग है उसे जानना। राग का यहाँ ज्ञान होता यह अभी यहाँ बात नहीं। मात्र राग जानने में आता है कि यह राग है - इस अपेक्षा से उसे असद्भूत उपचरित व्यवहारनय कहते हैं। जानने में आया है और फिर भी राग यहाँ है - ऐसा उपचार से कहा, और उस राग को सूक्ष्मपने तो टालते है थोड़ा, ***यह जानने में आता नहीं फिर भी राग है - ऐसा ज्ञान में आता (है) सीधा ख्याल में नहीं आये, परंतु ज्ञान में हो कि अभी यह स्थूलराग है, उसीप्रकार सूक्ष्म भी राग है, इसलिये उस ज्ञान में न आनेवाले राग को असद्भूत अनुपचार व्यवहारनय कहा जाता है।*** आहाहा !

अब, सद्भूत के दो भेद, कि राग को वह जानता है यह दूसरी वस्तु हो गई वस्तु। यह तो राग को जाननेवाला ज्ञान है, यह ज्ञान है अपना अर्थात अपना सद्भूत है फिर भी यह ज्ञान राग को जानता है - ऐसा कहना वह उपचार है। आहाहाहा ! यह व्यवहारनय सद्भूत भी असत्यार्थ है (उपचरित है) गौण करके उसे झूठा स्थापित किया है।

और चौथी (नय) यह **`ज्ञान सो आत्मा'** वह तो ज्ञान राग को जानता था इतना कहना था। है अपना, परंतु (राग को) जानता है - ऐसा कहना वह उपचार। अब यह `ज्ञान सो आत्मा' उसका नाम `सद्भूत अनुपचार व्यवहारनय' कहा जाता है।

यह `सभी' चार के अर्थ में है। यह `सभी' शब्द जो लिखा है उसके यह चार अर्थ हैं।

यह चारों नय असत्यार्थ होने से असत्यार्थ अर्थात त्रिकाली वस्तु नहीं, क्षणिक है और उसका आश्रय करने से राग होता है, इसलिये उस नय को / वस्तु चार होने पर उसे गौण करके असत्य है - ऐसा कहने में आया है। कठिन गाथा है यह। समझ में आया ?

गौण करके असत्यार्थ होने से... अविद्यमान... लो देखा, (जो) नहीं उसको वह कहता है, है तो अवश्य सद्भूत ज्ञान वहाँ सद्भूत ज्ञान-उपचार सद्भूतज्ञान... वहाँ सद्भूत ज्ञान-उपचार, सद्भूत ज्ञान अनुपचार - ऐसा कहा, परंतु त्रिकाल की अपेक्षा से, यह सद्भूत जो कहा था उसे भी `नहीं' असत्य है। - ऐसा गौण करके उसे `नहीं' - ऐसा कहा है। आहाहा ! समझ में आया ?

`अविद्यमान' अर्थात हमें आश्रय करने लायक चीज नहीं (व्यवहारनय) यह नहीं। इसलिये नहीं। है अवश्य, वस्तु-वस्तु अपेक्षा हो आहाहा ! वह असत्य है।

त्रिकाली सत् की अपेक्षा इन चारों नयों का विषय वह गौण करके असत्य कहा है। असत् अर्थ को प्रगट करता है, स्वरूप में नहीं उसे वह नय प्रगट करता है।

सद्भूत व्यवहारनय का भेदपना और असद्भूत राग मात्र तो यह वस्तु में नहीं इसलिये यह अभूत अर्थ को प्रगट करता है। इस वस्तु में नहीं उसे यह कहता हैं, इसलिये उसे व्यवहार कहकर झूठा कहा है।

विशेष कहा जायेगा - (प्रमाण वचन गुरुदेव !)